B.A.PART-1 (Education{Honours})

Paper-2 DEVELOPMENT OF EDUCATION IN INDIA

AND

B.A.PART-2

(EDUCATION{SUBSIDIARY})

Presented by: Dr.Pallavi

Assistant Professor
School of Education
N.O.U.

वैदिक युग में शिक्षा (Education During Vedic Period)

भारतीय शिक्षा को परम्परा अनुमानत विश्व की अत्यन्त पुरानी व्यवस्था कहीं जा सकती है। किसी भी राष्ट्र का आदर्श एवं संस्कृति उसकी शिक्षा के आधार पर तौली जाती हैं वैदिक युग में शिक्षा जाती थी । शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्र का निर्माण और संस्कृति की सुरक्षा संभव है संस्कृति की विरासत का शिक्षा के द्वारा ही प्रतिबिम्बित किया जाता है। राष्ट्र के उदीयमान व्यक्तियों को तैयार किया जाता था। भारत के महापुरुष प्राचीन काल में भी शिक्षा युक्त होकर उच्चस्तरोप आदर्श प्रस्तुत करते थे । ऐसा करके वे समाज को समृद्ध और सभ्य बनाते थे। अत: संस्कृति का केन्द्र विद्यालय ही होता था। हमे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक युग में, जिसकी तिथि लगभग पचीस सौ वर्ष पुरानो तय को गयी है.
कागज या मुद्रण कला उपलव्य नहीं धो। अत: आज जैसे जन सम्पर्क के साधन उपलब्ध नहीं थे ।अनुमानतः सीमित संख्या में विद्यालय ही ज्ञान तथा संस्कृति के आदान प्रदान के माध्यम

- ***1. शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education***) प्रारम्भ में ही यह कह देना आवश्यक है कि वैदिक काल में भी शिक्षा का प्रयोग व्यापक और संकुचित दोनों अर्थों में किया जाता रहा है। व्यापक अर्थ में शिक्षा वह है जो मनुष्य को सभ्य एवं उन्नत बनाती है। शिक्षा आजीवन चलते रहती है जैसा कि आज के जीवन में समझा जाता है। वैदिक काल में एक "यावज्जीवमधीते विप्र" इसका अर्थ होता है कि शिक्षा सारा जीवन चलते रहती है। शिक्षा प्राप्त करन वालों को हम आज विद्यार्थी या छात्र कहते हैं उस समय उसे (विप्र) कहा जाता था। एक चिकित्सक का या वकील को जितने ज्ञान की आवश्यकता है उतना उसे किसी विद्यालय या महाविद्यालय में प्राप्त नहीं होता। चिकित्सक जितने भी व्यक्तियों की चिकित्सा करता है या वकील जितने ही मुकदमों पर बहस करता है उतना ही उसका ज्ञान विस्तृत होता जाता है यह बात अध्यापक, चित्रकार, व्यापारी, प्रबंधक इत्यादि पर भी सागू होती है। किन्तु जब हम शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श पर विचार करते हैं तो शिक्षा शब्द का उसके संकुचित अर्थ में ही प्रयोग करते हैं। इस अर्थ में हो शिक्षा से हमारा तात्पर्य उस शिक्षण से होता है जो वह छात्र बनकर अपने जीवन के कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने के पहले ग्रहण करता है।

- **(क) शिक्षा प्रकाश है-वैदिक** काल में शिक्षा का मूल तात्पद यह रहा है कि शिक्षा प्रकाश का स्रोत है । प्रकाश की हो तरह शिक्षा हमे सच्चे मार्ग का प्रदर्शन करती है ।यह मनुष्यके तीसरे नेत्र के समान मनुष्य को समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ बनाता है ।

(**<u>ख) मूल्यों की प्राप्ति =</u>**एक वैदिक ऋषि का कधन है कि कोई मनुष्य दूसरे से बडा है तो इसका मतलब यह कि वहो बुद्धि और शिक्षा के द्वारा अधिक परिपक्व और पूर्ण होते हैं । मनुष्य और पशु में मूल्यों का ही अन्तर है। एक सही अर्थ में विद्या प्राप्त करने साला मनुष्य मानव मूल्यों से पूर्ण होता है यहीं कारणहै कि वह अन्य लोगोंगे भिन्न होता है। **भर्तृहरि** का कधन है कि विद्या विहीन पशु भी समान । ब्राहमण और शुद्र की पहचान उस गुग के शिक्षा और शिक्षा से प्राप्त मूल्यों के आधार पर ही होतो थी । जन्म के आधार पर जाति प्रथा का विभाजन वैदिक काल में नहीं हुआ था । जन्म के आधार पर जाति का विभाजन ब्राहमण काल में आरम हुआ ।

-

(ग) आचार शिक्षा और चरित्र निर्माण-शिक्षा के उद्देश्य में चरित्र निर्माण एक महत्त्पूर्ण उद्देश्य है। चरित्र निर्माण तभी हो सकता है जब मनुष्य में सत्य-निष्ठता और सत्याचरण हो । जब तक बह अमत्य, झूठ, छल, प्रपंच आदि का परित्याग नहीं करेगा, तब तक चारित्रिक शुद्धि नहीं होगी। **यजुर्वेद** में कहा गया है कि 'मैं सत्य को छोड़कर सत्य को अपनाया हूँ।

(**घ) विद्या और-बुद्धि का समन्वय-विद्या** के साथ व्यावहारिक बुद्धि का होना आवश्यक है। व्यवहार शून्य विद्दया को विधा नहीं कहा जा सकता । अत: वेद का भी कथन है कि सरस्वती विद्या) के साथ धी (व्यवहार बुद्धि) आवश्यक है ।

ङ) ज्ञान और कर्म का समन्वय-शिक्षा वही सफल होती है , जिसमें कर्मठा की शिक्षा दी जाती है। प्रगतिशील. कर्मठ एवं सतत संघर्षशील बनाना शिक्षा का लक्ष्य है। **अथर्ववेद** में कहा गया है 'मेरी बुद्धि सदा कर्मठ रहे एक जगह और एक अन्य श्लोक में काा गया है "देवता पुरुषार्थी को चाहते हैं अकर्मण्य का नही' ।

(च) **तप और शिक्षा-अथर्ववेद** में मूल्यों का विकास करना तथा तप (अनुशासन) और दोक्षा (समर्पण) को राष्ट्रीय उन्नति का आधार बताया गया है।

(छ) बुद्धि का परिष्कार और बौद्धिक <u>विकास- अथर्ववेद</u> का कधन है कि शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति की बुद्धि का विकसित करना और उन्नति की ओर ले जाना । **डा० ए० एम० आलेकर** ने लिखा है ईश्वर भक्ति, धार्मिक

भावना एवं चरित्र निर्माण, व्यक्ति विकास, नागरिक एवं सामाजिक मूल्यों का विकास, सामाजिक दक्षता का विकास तथा राष्ट्रीय संस्कृति का प्रचार एवं संरक्षण प्राचीन भारतीय शिक्षा के प्रमुख उ्देशप थे ।

(ज) संस्कृति का संरक्षण और सांस्कृतिक परम्पराओं का निर्वहन- वे प्राचीन शिक्षा प्रणाली के सवस महत्वपूर्ण अंग थे । सभी मानते है कि शिक्षा सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं केअविच्छिन्न का मुख्य साधन है । यदि शिक्षा उदीयमान संतति को उत्तम प्राचीन परम्पराओं को स्वीकार कर तदनुरूप आचरणा करना नहीं सिखातो तथा अगली पीढी तक इस परम्परा को नहीं पहुंचा देतो तो अपने मुख्य उद्देश्यें में वह पूर्णतया असफल है। हिन्दू ग्रंथों का स्थूल दृष्टि से अध्ययन करनेवाता पाठक भी इस बात से प्रभावि त हुए बिना नहीं रह सकता है कि हिन्दू विचारक सम्पूर्ण साहित्यिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक परम्पराओं के संरक्षण और उसके अविच्छेद के लिए कितनी गंभीरतापूर्वक चिन्तित थे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सन्तान को अपने व्यवसाय की शिक्षा देता था। इस प्रकार अनेक पीडियो का अनुभव नयी सतति का प्रारंभ में ही सुलभ हो जाता था। वैदिक साहित्य के संरक्षण का उत्तरदायित्व सम्पूर्ण आर्य जाति पर था । प्रत्येक आर्य को इस पवित्र साहित्य निधि का कोई न कोई अंग अवश्य याद करना पड़ता था। ब्राह्मण के लिए सम्पूर्ण वेदो को कंठस्थ करना तथा उसे भावी संतति को कंठस्थ कराना धर्म माना गया था 1 यह सत्य है कि सभी ब्राह्मण इस उपदेश का पालन नहीं करते थे। किन्तु यह मात्र इसलिए कि उन्हें इतना व्यवहारिक ज्ञान था कि इस कार्य के लिए सम्पूर्ण जाति को सर खपाने की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु ब्राह्मणों का एक वर्ग तो वेदवाङमय की संरक्षा के लिए अपने जीवन और प्रतिभा को अर्पित करने के लिए सन्नद्द्ध रहता था। यह विद्या को आजीवन तथा प्रायः कष्टदायक भक्ति थी, क्योंकि उन्होंने उस ग्रन्य को कंठस्थ करने का उत्तरदायित्व लिया था जिसका अर्थ वे नहीं बल्कि दूसरे जानते थे ।इससे सान्सारिक लाभ की आशा भी अल्प थी । शेष ब्राह्मण व्याकरण, शहित्य, काव्य, जवहार, दर्शन और न्याय जैसे शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण काते थे । इन शास्त्रो में वे अपने पूर्वजों के ज्ञान का संरक्षण ही नहीं बल्कि अपनी रचनामा उसको समृध भी कर रहे थे । यह क्रम मध्यपुग तक चलता रहा । इस प्रकृति का स्वाभाविक परिणाम विशिष्टीकरण था जिसका उद्देश्य शिक्षा विस्तृत नहीं बल्कि गम्भीर बनाना था।

(झ) तीन अर्णो का सिद्धान्त-वैदिक काल से ही भारत में तोन ऋणों का मनोरजक सिद्धांत प्रचलित था जो पूर्वजों के विचारो और कृतियों को सुरक्षित रखने के लिए सर्वदा संतति को प्रोत्साहित करता था । इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति तीनों ऋणों के साथ जन्म पहण करता है। कतिपय कर्तव्यों की पूति से ही यह इनसे मुक्त हो सकता है। सर्व प्रथम बह देवताओं का ऋणी है, जो यज्ञो द्वारा चुकाया जा सकता है। इस प्रकार पार्मिक परम्परामा का संरक्षण होता था। दूसरा ऋण है ऋषियों का जिसको पूर्ति उनके ग्रंथों के अध्ययन और उनकी साहित्यिक और व्यावसायिक परम्पराओं को अविच्छिन्न रखने में हो सकती है। इस प्रकार उदीमान संतति राष्ट्र को उतन साहित्यिक और व्यावसायिक परम्पराओं के संरक्षण के योग्य बनती थी। तीसरा ऋण पितरों का है , संतति उत्पादन और उनके सम्पक शिक्षण के द्वारा इस ऋण से मुक्ति मिल सकती है। इस प्रकार यह व्यवस्था की गयो थी कि प्रत्येक विद्यार्थी ंस्कृति और प्राचीन परंपराओं का उन्नायक बने ।

माता-पिता की आज्ञाओं के पालन, गुरुजनों के आदर और प्राचीन ऋषियों के प्रति आभार प्रदर्शन का भी आग्रह किया जाता था। प्राचीन परम्पराओं के संरक्षण में इससे भी गहायता मिलती थी । इस संबंध में स्वाध्याय और ऋषि तर्पण की विधि विशेष महत्वपूर्ण है। स्वा्पाम में इस बात का आग्रह किया जाता था कि प्रत्येक व्यक्ति दिन में कम से कम एक बार ब्रह्मचर्य जीवन में पढें पुराने पाठ की आवृत्ति के लिए कुछ समय अवश्य निकाले। ऋषि तर्पण नित्य सन्ध्या वंदन के - समय प्राचीन साहित्यमाची महषियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापितो को करने क लिए किया जाता था। उत्तर काल में जब जनता वेद भाषा नहीं समझ सकती थी । और दर्शन के गूढ सिद्धान्त उसे नही रूकती थी । जनता में राष्ट्रीय संस्कृति और परम्पराओं को प्रचारित करने के लिए एक नये साहित्य का विकास हुआ जिस पुराण कहते हैं । देश भाषा में प्रतिदिन इसकी व्याख्या की जाती थी । फलस्वरूप प्राचीन

परम्पराए छनकर यहाँ के अनपढ़ जनता में सुरक्षित हो गयों। देशो भाषाओं के भक्ति साहित्य ने भी यह कार्य म बडी निपुणता से किया है ।

(**अ**) **शिक्षा विषयक कतिपय सिद्धान्त और धारणायें-यहाँ** पर यह कह देना अति आवश्यक है। कि वैदिक काल में कतिपय सिद्धान्तों और धारणाओ का शिक्षा में प्रयोग किया जाता था। इस बात पर कोई विशषै चर्चा नहीं हुई है । परन्तु कुछ स्फुट सूत्रों और सुभापितो के आधार पर यहाँ चर्चा की गयी ।

(**क) शिक्षा ठोस एवं मूलग्राही** हो-पहले ही यह हम देख चुके हैं कि प्राचीन काल में शिक्षा को अंतर्ज्योति का साधन माना जाता था। शिक्षा व्यक्ति का जीवन का कठिनाइयों का सामना करने योग्य बनाएगी । अतः, शिक्षा कार्य को साधक माना गया है । शिक्षा का उद्देश्य विषयों का ज्ञान मात्र करा देना तक ही सीमित नहीं था। बल्कि, इसका आदर्श विभिन्न क्षेत्रों में उच्च कोटि का विशेषज्ञ बनाना था । कागज और मुद्रण कला अज्ञात रहने से प्रायः पुस्तकालय नहीं थे। अत: विद्यार्थियों को इस तरह से शिक्षित किया जाता था कि वे विद्यालय में जो कुछ सोखे वह आजीवन याद रहे और काम में आये। इसका भी ध्यान रखा जाता था कि किस तरह को प्रवीणता किस व्यवसाय के लिए आवश्यक है। अत: अलग-अलग व्यवसायों के लिए अलग अलग प्रवीणता दी जाए।

वैदिक काल में जाति प्रथा का विकास नहीं हुआ था। अत: आग्रह यह किया जाता था कि उन सभी व्यक्तियों को जो शिक्षा पाने के योग्य हो उन्हें शिक्षा दी जाये। सभी आर्य जन के लिए, उपनयन संस्कार आवश्यक था । इस संस्कार के बाद हो शिक्षा प्रारम्भ की जाती थी। यह भी घोषित कर दिया गया कि सन्तति उत्पादन से ही पितृ ऋण से मुक्ति नहीं मिल सकती उसे उचित रूप से शिक्षित करना भी आवश्यक है। प्राचीन भारतीयों का मत था कि ब्रह्मचारी को अध्यपन काल में विवाह नहीं करना चाहिए । बेदिक कात या अन्य प्राचीन काल में विद्यार्थी को ब्रह्मचारी कहते थे। अध्ययन पूरा होने के उपरान्त ही वा गुरु से आज्ञा लेकर ही विवाह कर सकता है।

प्राचीन काल में पुस्तकों और पुस्तकालयों की कमी होने के कारण अधिकांश विद्यार्थी प्राप्त ज्ञान को भूल जाते थे। अत: शिक्षा ग्रहण के समय हो गुरू यह बार-बार अपने छात्रों
को स्मरण कराते रहते थे कि पाठशाला छोड़ने के े बाद भी पढे हुए ग्रंथो के कुछ अंशों को निममित रूप से प्रतिदिन आवृत्ति करते रहे । ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश करने उपरांत भी स्वाध्याय करते रहने पर बल दिया जाता था। प्राचीन भारतीय का मत था कि शिक्षा गुरुनिष्ट नहीं है। इससे सर्वोत्तम फल तथा निकलेगा जब छात्रों का स्वच्छा प्रेरित पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा ।

2.**वेदों में निहित ज्ञान (Knowledge Contained in the Vedic**)

वेदों में सभी प्रकार का ज्ञान अंतर्निहित है और ये समस्त कला और विज्ञान को मूलभूत जानकारी प्रदान करते हैं। वास्तव में ये ज्ञान और विवेक के प्राभमिक स्त्रोत हैं । इनमें मानव जीवन के सभी पहलुओं का समावेश है । इनमें विद्वानों, विद्यार्थियों, सैनिकों, योद्धाओं और शासकों आदि के कर्तव्यों को निर्धारित किया गया है। वंदा में अत्यंत उच्च कोटि के आदर्शों और मूल्यों का समावेश है। यह सोचना गलत है कि वेदों में कंचत स्तोत्र है , जिनका पार्मिक अनुष्ठानोंके समय पाठ किया जाता है । वेदों के विषय =वस्तु से स्पष्ट हो जाता है कि उनका क्षेत्र अत्यना व्यापक है और मनुष्य के दैनिक जीवन से पूर्णतः सम्बंधित है । यह मनुष्य मात्र को अनिवार्य ज्ञान प्रदान करते हैं। **एस. सी० बिलियम जॉस** (**S. C. William Jones**)के शब्दों में "वेदों से हमें शल्य क्रिया ,औषधि, सग्गीत , धनुर्विद्या एवं भवन निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है। जीवन के प्रत्येक पहलू , जैसे कि संस्कृति धर्म, विज्ञान, रहस्यवादः नीतिशास्त्र, विधि, ब्राह्मड विज्ञान और मौसम विज्ञान आदि के विश्वकोष है ।"

वेद को ईश्वर की वाणी समाझा जाता है। ऋषियों और मनीषियों ने वेद में निहित ज्ञान को तप एवं साधना द्वारा प्राप्त किया तथा गहन चितन किया, जिस तप कहते हैं। ऋग्वेद विरव के पवित्र धर्म ग्रंथों मं

सर्वाधिक प्राचीन है । यह पूर्व के सभी ज्ञानो का मूल स्रोत है। इसमें 10,522 छदों में लिखे गये, I,028 स्तोत्र निहित हैं। इसे मंडलों में विभक्त किया गया है, जो 85 उपखंडों में उपविभाजित है। ऋग्वेद प्राचीन भारत की बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रगति का कीर्ति स्तम्भ है। सुप्रसिद्ध गायत्री मंत्र (11163.10) का भी सामवेद और यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है। ऋग्वैदिक काल के लोग स्वयं को आर्य कहते े थे। यजुर्वेद में धारमिक अनुष्ठानों का विवरण मिलता है। सामवेद (विषम) गौतों का संग्रह है और अथर्ववेद में चिकित्सा विज्ञान से संबंधित ज्ञान है। यह भारतीय चिकित्सा शास्त्र की प्राचीनतम पुस्तक है । चारो वेदों में वैदिक साहित्य को मूल और प्रमुख सांत हैं। वेदों को श्रुति भी कहते हैं क्योंकि इसमें अन्ननिहित ज्ञान कुर प्रमुख व्यक्तियों में सनकार अर्जित किया ।

3. वेदों के काल के साथ में अनेक विवाद

1. मैक्स मूलर ने ऋग्वैदिक कात को 1200=1500 ई. पू. माना है।

2.. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अनुसार वैदिक काल अस्पष्ट है और यह 2500=6000 ई. पू.हो सकता है। बाद में मैक्स मुलर ने कहा है "पृथ्वी पर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो यह निश्चित कर सके कि वेदों की रचना 1000१ ० या 1500 ई० पू० या 2000 3० पू० 3000 ई.पू. में की गयी ।"

3. डा. पिन्टर पिट्ज येदां की रचना का कात 20002500 ई० पूर के योच मानत है।

4. शिक्षा से संबंधित संस्कार-प्राचीनकात में ऋषि-मुनियों ने पूर्ण व्यक्तित्व का विकास, मानव को क्षेष्ठ बनाने के लिए, परिवार, समाज, देश तथा संसार में सुख-शांति के लिए, सोलह संस्कारों का प्रतिपादन किया उनमें से प्रमुख संस्कार नीचे दिव जाते है।

1**. गर्भधारण संस्कार-गर्भधारण के** समय मन की स्थिति का बच्चे पर बहुत प्रभाष पड़ता है। आनेवाले जीव के भावो औवन को नोच इस अवस्था में पढ़ आती है। महाभारत के एक पात अभिमन्यु का उदाहरण दिया जा सकता है।

2. पुंसवन संस्कार-बह संस्कार गर्भ स्थिति के ज्ञान उपरान्त दूसरे या तीसरे महीने कराने का अधिकार है। इसका उद्देश्य निरागवा, सुन्दरता, तेजस्विता तथा स्वरूपता आदि का करना है।

3**. सीमंतोन्नयन संस्कार-यह** शब्द दो शब्दों से बना है सौमन तथा उन्नयन । सीमांत का अर्थ है मस्तिष्क और उनपन का अर्थ है विकास । यह संस्कार बच्चे के मानसिक विकास के लिए किया जाता है। यह संस्कार चौथे छठे या आठ महीने में किया जाता है।

4. उपनयन संस्कार-पह बालक को शिक्षा आरम्भ होने का संस्कार है। विद्या अध्ययन के लिए बालक को ले जाना ही उपनयन संस्कार ई। उपनयन संस्कार से शिक्षा-दीक्षा का आरम्भ होता है। उपनयन के बाद ही व्यक्ति द्विज के नाम से पुकारा है ।

4. उपनयन संस्कार-पह बालक को शिक्षा आरम्भ होने का संस्कार है। विद्या अध्ययन के लिए बालक को ले जाना ही उपनयन संस्कार ई। उपनयन संस्कार से शिक्षा-दीक्षा का आरम्भ होता है। उपनयन के परा है। पिता को संज्ञा दिज दी जाती है।

5. **वेदारम्भ संस्कार-ये** उपनयन संस्कार से ही मिलता जुलता संस्कार है। इसका मतलब यह वेद अध्ययन आरम्भ करना ।

6. **समावर्तन संस्कार-यह** गुरुकुल शिक्षा की समाप्ति पर होता है इसे दीक्षात संस्कार भी कहते हैं।

गुरुकुल की शिक्षा व्यवस्था-वैदिक काल गुरुकुल आबादी दूर हुआ करता था। गुरुकुल मे गुरु और छात्र रह कर पढ़ते थे । गुरु अपने शिष्यों को अपनी सन्तान मानते थे। शिष्य गुरु को माता पिता से बढ़कर मानते थे। शिष्य यह समझता कि गुरु उसे मनुष्यता ऊपर उठाकर देवत्व की तरफ ले सकता है । गुरुकुल प्रवेश पश्चात् गुरु अपने छात्र के शारीरिक, नैतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास पर उतना ही ध्यान रखते धे ,जितना माता अपने बच्चों का रखती है। गुरु कार्य केवल पढना ही था ।वह शिष्य को सदाचारी बनाते और उसका चरित्र-गठन भी किया करते थे । गुरु के आश्रम
में गरीब-अमीर का कोई भेदभाव नहीं था। समी एक-दूसरे के सुख=दुःख मे साथ रहते थे । ऊच-नीच का भेद भाव नहीं था ।। ममी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।

5.. वैदिक कालीन शिक्षा की विशेषताए (Special features of Education During Vedic Period)

1**. ज्ञान के प्रति प्रेम** =-ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इसने प्राचीन समय में आरम्भ हुआ हो, या जिसे इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो। शिक्षा और ज्ञान भारतवासियों के लिए नवीन नहीं है।

2. शिक्षा का तात्पर्य-वैदिक मुग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूत तात्पर्य यह रहाा है कि शिक्षा प्रकाश कास्रोत है ै, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पद-प्रदर्शक रहा है । प्राचीन काल में भारतीयों का दृढ विश्वास था कि शिक्षा से विकसित बुद्धि यथार्थ बल है। शिक्षा कल्पवृक्ष को समान हमारे समस्त मनोरथ की सिद्ध करती है। विद्या के बिना मनुष्य पशु समाना हो जाता था। प्राचीनकात में शिक्षा का अर्थ अन्तरज्योति और शक्ति से था । जिससे मानव के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक बल का संतुलित विकास हो सकता था।

3**, शिक्षा का उद्देश्य-शिक्षा** जीवन के मूल लक्ष्य मोक्ष की प्रापिा था। इसी भावना से प्रेरित होकर प्राचीन काल में भारतीय ऋषियों मे शिक्षा को धार्मिक क्रियाओं से ओत-प्रोत कर मानव के सर्वांगीण विकास की प्रेरणा दी। अत: ऐसा भी कहा जा सकता है कि ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना ,चरित-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन सामाजिक कौशल की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देस्य एवं आधार में। इस प्रकार वैदिक शिक्षा का उद्देश्य छात्र का सर्वांगीण विकास कर उस समाज का एक सक्रिय एवं उपयोगी सदस्य बनाना था। वैदिक काल में बालक के शारीरिक मानसिक एवं नैतिक पक्षों का विकास का उसे कुशत सामाजिक प्राणी बनाने का था ।

4**. शिवा का संगठन :** गुरुकुल प्रणाली-वैदिक काल में वातक की शिक्षा गुरुकुत में हाी थी। वह गुरु के पर रहता था किसी शिष्य को स्वीकार करना गुरु की इच्छा पर निर्भर करता था। जो बातक शिष्य रूप में स्वीकार किया जाता, उसे कई नियमों एवं संस्कारों से होकर गुजरना पढता भा। माता-पिता के समान गुरु छात्रों का पालन-पोषण करता था। छात्र ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके नियमित दिनचर्या व्यतीत करते थे तथा व्यावहारिक, मानसिक एवं नैतिक

शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरुकुल सामान्य: नैसर्गिक सौन्दर्य से सुरभित, नगर के कोलाहल से दूर, प्रकृति के सुरम्य कक्ष में स्थित होते थे।

5**, पाठ्यक्रम-वैदिक** काल में पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत था। आध्यात्मिक और लौकिक, दोनों प्रकार को विधाओं का समावेश पाठ्यक्रम में किया आता था । पाठ्यक्रम में इन विषयों की शिक्षा दी जाती थी । चारों वेद, इतिहास और पुराण, व्याकरण, अर्थशास्त्र, शकुन विद्या, भूगर्भ विद्या, तर्कशास्त्र, आचारशास्त्र, भौतिकी, ब्रह्मविद्या प्राणिशास्त्र, सैन्य विज्ञान, शिल्प विज्ञान, संगीत शास्त्र एवं आयुर्वेद । छात्र अपनी रूचि एवं सामर्थ्य के अनुसार किसी भी विषय का गहन अध्ययन कर सकते थे ।

6**., शिक्षण =पद्धति** =, इस समय मौखिक विधि से अध्ययन किया जाता था ।शिक्षण कार्य तीन क्रियाओं द्वारा होता था (क) श्रवण (ख)मनन (ग। निदिध्यासन ॥श्रवण से स्मृति, एकाग्रता, उच्चारण कुशलता, समझ आदि गुणों का विकास होता था । मनन से तर्क शक्ति, न्याय, निर्णय शक्ति, विश्लेषण, सन्श्लेष आदि गुणों का विकास होता था । निविण्यासन में आत्मनुभूति, आत्मपरिचय ,आत्मावलम्बन, आत्मानुशासन, आत्म=नियंत्रण आदि मानसिक गुणों का विकास होता था ।

7.गुरु शिष्य सम्बन्ध-जिस प्रकार क मिता अपने पुत्र के विषय में यही आकांक्षा करता है कि वा ससे अधिक सुरणी गाथा प्रभावशाली मी. उसी प्रकार गुरु भी यही जाकांक्षा करता था कि उसका गिप्प प्रत्येक दृष्टि से अधिक समुन्नत हो ।

8.. व्यक्तिगत शिक्षण प्रणालो-सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली व्यक्तिगत थी। गुरु और शिष्य एक-दूसर के व्यक्तित्व को पहचानने और एक दूसरे के विचारों का सम्मान करते थें ।

9. **शिक्षण काल-रिक्षा** काल सामान्यतः ।2 वर्षों का होता था। छात्र अपनी इच्छा में अधिक समय भी लगा सकता था।

10, **स्त्री =शिक्षा** = वैदिक काल में स्त्री शिक्षा का प्रचलन था । बालिकाओं को बालकों के समान ही शिक्षा दी जाती थी।

11. परीक्षा प्रणाली-शिक्षा समाप्ति पर बिशेष परीक्षाओं का प्रवन्ध नहीं था । गुरु का मंतोष हो सबसे बर्डी परीक्षा थी । गुरु प्रतिदिन जो भी पढाते थे उसे अगले दिन प्रत्येक विद्यार्थी से सुनते थे। पूर्ण मतुष्ट होने पर अगला पाठ गुरु किया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक बालक का शिक्षण काल उसकी व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करता था ।प्रत्येक विद्वान को सदैव शास्त्रथो के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता था । प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा किसी भी स्नातक के ज्ञान का अनुमान लगा लिया जाता था।

12. अनुशासन-इस काल में आत्मानुशासन को ही उत्तम अनुशासन समझा जाता था इन्द्रिया निग्रह पर बल दिया जाता था। गुरुकुल में 'सादा जीवन, उच्च विचार' को मानकर रहना पड़ता था।

13. निःशुल्क शिक्षा-ब्राहाणों का कर्तव्य शिक्षा देना समझा जाता था। जब तक एक शिष्य शिक्षा का अर्जन करता रहता था । तब तक गुरु किसी प्रकार को फीस स्वीकार नहीं कर सकता था।

14. बाह्य नियंत्रण से मुक्ति-प्राचीन भारत में शिक्षा पर राज्य अथवा सरकार का नियंत्रण नहीं था। राजा का यह कर्तव्य था कि वह इस बात को देखें कि विद्वान् पंडित बिना किसी विघ्न के अध्यापन कार्य में लगा रहे।

15. जनसाधारण की शिक्षा-प्रत्येक बालक की शिक्षा का प्रबन्ध था। निर्धनता उच्चतम शिक्षा पाने में किसी प्रकार से रुकावट नहीं डाल सकती थी। कई राजे इस प्रकार कर थे कि उनके राज्य में कोई अशिक्षित नहीं है । इस शिक्षा पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वह राजा-महाराजाओं की सहायता अपवा कृपा पर ही आश्रित नहीं था । जनसाधारण, अध्यापको तथा छात्रों का इसमें विशेष हाय था ।

16. शिक्षा में दण्ड-असाधारण परिस्थितियों में ही शिष्यों को शारीरिक दण्ड दी जाती थी ।

17. गुरुदक्षिणा--शिक्षा समाण होने तथा समावर्तन के उपरान्त शिव का कर्तव्य था कि यह गुरु को दक्षिणा द्वारा प्रसन्न करे । इनको के लिए यह अपमान की बात थी कि उन्होंने दक्षिणा नही। इसी लिए अन्तिम बार भिक्षा माँगने का भी अधिकार था। गृहस्थ तथा राजा-महाराजे ऐसी भिक्षा के लिए 'ना' न कर सकते थे। अधिकतर सावकों के घरवाले हो इसे प्रस्तुत कर देते थे।

6 .वैदिक शिक्षा के गुण-दोष तथा देन (Merits-Demerits of Vedic Education and its Contribution)

1.**बैदिक शिक्षा के गुण-बैदिक** शिक्षा प्रणाली समाज की आवश्यकतानुसार यी । शिक्षा को मनुष्य को 'तीसरी आँख "कहा जाता था। बालक के व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया जाता था। शिक्षा बिना किसी मेदभाव के उपलब्ध थी । अमीर-गरीब में कोई अन्तर नहीं था। जोवनपर्यन्त शिक्षा थी। शिक्षा गुरु के धर पर दी जाती थी , जिसे प्राय: गुरु-आश्रम या गुरुकुल कहा जाता था। पाठ्यक्रम विस्तृत था। यह आध्यात्मिकता पर आधारित होने के साथ व्यावसायिक भी था । मूल्य शिक्षा का अमिन्न अंग माना जाता था। गुरु तथा शिष्य का निकटतम संबंध था। शिक्षा प्रकृति की गोद में दी जाती थी।

2.वैदिक शिक्षा की सीमाएं-(1) शिक्षा में अधिकतर जड़ा थी, (2) अनुशासन बहुत कठोर या.{3) रटने पर जोर था (4) इहलोक की शिक्षा पर उचित बत नहीं दिया जाता था (5) धार्मिक अनुष्ठानों की भरमार थी ।

3.बैदिक शिक्षा की विशेषताएँ जो वर्तमान में अपनाई जा सकती है- (1) गुरु शिष्य मं निकट, (2) कक्षाओं का छोटा आकार (3) अनुशासन पर उचित बल. (4) प्रभावों नैसर्गिक वातावरण
(5) मूल्य शिक्षा का महत्त्व देना, (6) छत्रा का सतत मूल्यांकन (7) गुरु अपया शिक्षका का समाज म आदर का स्थान होना।

7.. **सारांश** (**Summary**) प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय बेदों से माना जाता है। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास करना था। छाकी अपना शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास करने के पूर्ण अवसर दिये जाते थे। शिक्षा की प्रकृति धर्म प्रधान तथा आध्यात्मिक यो । परन्तु भौतिक समृद्धि की अवहेलना नहों को जाती थी। जीवन के तीन ऋणों-गुरु ऋण, देव ऋण ब पितृ ऋण से क्रमराः ब्रह्मचर्य यज्ञ व सन्तानोत्पत्ति के द्वारा उऋण होने का प्रयास किया जाता था। वैदिक कात को शिक्षा प्रणाली चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, संस्कार डालने, सत्य की खोज, सामाजिक कुशलता तथा सांसारिक वैभव की प्राप्ति के वदेश्यों में पूर्ण सफत रही थी। उस समय को शिक्षा व्यवस्था की अनेक विशेषताओं का समावेश आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में किया जा सकता है। शिक्षा के उद्देश्य, अनुशासन, गुरु छात्र संबंध, सतत मूल्यांकन, समावर्तन उपदेश आदि आज के युग में भी पूर्णरूपेण प्रासंगिक है।

8**. अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise**)

1. वेदों के अनुसार शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करें। (Explain the meaning of education as given in Vedas.)

2. वेदों के अनुसार ज्ञान क्या है ?

(What knowledge according to Vedas. What are the special features of Vedic education.)

3. वैदिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर प्रकाश डालें। (Throw light on the curriculum of Vedic.).

4. वैदिक शिक्षा के गुण-दोष बतायें। (State the merits and demerits of Vedic education.)